(दशलक्षण धर्म का) आठवाँ दिन है त्याग.... त्याग (धर्म)

जो चयदि मिट्ठभोज्जं, उवयरणं रायदोससंजणयं।
वसदिं ममत्तहेदुं, चायगुणो सो हवे तस्स॥ ४०१॥

मुनि की व्याख्या है। जिन्हें अपना आत्मा ज्ञानस्वरूपी आनन्द का अन्तर अनुभव हुआ हो, तदुपरान्त स्वरूप में प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया हो, उन मुनि की बात है, उन मुनि को त्यागधर्म है। त्याग की व्याख्या - मुनि को संसार, देह, भोग के ममत्व

का त्याग है ही; अब, जिस वस्तु के साथ वर्तमान में काम पड़ता है, वह भोजन। भोजन में इष्ट भोजन को छोड़ते हैं। आहाहा! आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष इष्ट भोजन भी छोड़ देते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के... आहाहा! अनुभव और वेदन के समक्ष मुनि, प्रिय भोजन-इष्ट भोजन छोड़ देते हैं, उसका नाम त्याग है।

उपकरण के सम्बन्ध में उसमें राग-द्वेष का त्याग, जो उपकरण मिले हैं उनमें राग -द्वेष का (त्याग)। अनुकूल है — ऐसा नहीं रखते या जिसमें राग हो, और.... आहार, उपकरण, वस्ती, तीन के साथ सम्बन्ध, तीनों में राग का त्याग करते हैं। आहाहा! ममत्व का हेतु बड़ी बस्ती, मकान आदि हो तो आनन्द के स्वाद के आगे उसकी कोई कीमत नहीं है, वह बस्ती छोड़ दे उसका नाम त्यागधर्म कहा जाता है। त्याग अर्थात् यह बाह्य स्त्री, कुटुम्ब, परिवार का त्याग, वह तो है ही। संसार भोग, देह के ममत्व का त्याग तो है ही। उसकी बात है। आहाहा!

बस्ती, भोजन, और उपकरण — तीन के साथ सम्बन्ध है — तीन। तो इनके प्रति ममत्व की वृत्ति का (त्याग करते हैं)। आनन्द का स्वाद लेकर, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद... आहाहा! अनुभव में विशेष सुख का स्वाद आता है तो वह बस्ती छोड़ देते हैं। आहाहा! इसका नाम त्याग है। वह आठवाँ दिन है। आज ? बुधवार, बुधवार से।

यहाँ यह गाथा आयी। कहाँ तक आया ? अप्रतिबुद्ध... **महा अज्ञान से जिसका हृदय स्वयं अपने से ही विमोहित है — ऐसा अप्रतिबुद्ध...** है ? पाँचवीं लाइन है। क्या कहते हैं ? जैसे स्फटिक में... स्फटिक निर्मल होने पर भी, संयोग आदि में अथवा जिस चीज में स्फटिक रखा हो, उसकी झाँईं अन्दर पड़ती है। पीतल का बर्तन हो तो उसकी झाँईं पड़ती है, वह उपाधि है; उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप स्फटिक जैसा है, उसमें राग और पुण्य-पाप के भाव की झाँईं — उपाधि दिखती है। आहाहा! वह अस्वभावभाव है, शुभ-अशुभभाव.... आहाहा! वह अस्वभावभाव है, वह स्वभावभाव रहित है, उसे अपना मानकर अज्ञानी, अस्वभावभाव को अपना मानता है और वेदन करता है। आहाहा! परन्तु अपना आत्मा क्या है — उसका ज्ञानी को ज्ञान है; अज्ञानी को उसका पता नहीं है। आहाहा!

राग है परन्तु राग को जाननेवाला आत्मा भिन्न है — ऐसा ज्ञानी को ज्ञान है, अज्ञानी को पता नहीं। आहाहा! राग है, बहुत सूक्ष्म बात बापू! राग है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो तो वह शुभराग है, अस्वभावभाव है परन्तु उसे जाननेवाला यह है, ऐसा जानता कौन है? किसकी सत्ता में यह राग है — ऐसा ज्ञात होता है? समझ में आया? ज्ञान की सत्ता में वह राग, ज्ञात होता है। आहाहा! यह स्वभावभाव मैं हूँ — ऐसा अज्ञानी नहीं मानकर, यह दया, दान का विकल्प - राग आया, वह उपाधि है, वह अस्वभावभाव है, वह विभावभाव है... आहाहा! उसे अपना मानता है, अज्ञानी उसे अपना मानता है। है?

हृदय स्वयं अपने से ही विमोहित है — ऐसा अप्रतिबुद्ध जीव स्व-पर का भेद नहीं करके.... आहाहा! यह राग और स्वभाव भिन्न है — ऐसा दो का भेदज्ञान अज्ञानी नहीं करता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! **उन अस्वभावभावों को ही....** ये पुण्य-पाप के विकल्प, राग, उससे स्व का भेद नहीं करके, अस्वभावभावों को ही... है? आहाहा! **(अपना स्वभाव नहीं ऐसे विभावों को ही) अपना करता हुआ....** आहाहा! जानने-देखनेवाला भगवान ये स्वभावभाव से राग भिन्न है, और राग अस्वभावभाव से स्वभाव भिन्न है। आहाहा! ऐसा अनन्त बार मुनिपना लिया, द्रव्यलिङ्गी साधु हुआ परन्तु राग और आत्मा दोनों को एक मानकर, अस्वभावभाव में अपना लाभ मानकर मिथ्यादृष्टि रहा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कठिन काम है, भाई!

पुद्गलद्रव्य ही मेरा है.... यह रागादि पुद्गलद्रव्य है; वास्तव में आत्मद्रव्य नहीं है। आहाहा! चाहे तो वह शुभराग हो परन्तु वह राग, पुद्गल-जड़ है; चैतन्य नहीं। क्योंकि वह राग जानता नहीं है। राग जानता नहीं है; राग, ज्ञान द्वारा जानने में आता है; इसलिए राग पुद्गल और अचेतन है; भगवान उससे भिन्न हैं। आहाहा! परन्तु उसका इसे पता नहीं है, स्व और पर की भिन्नता का भान नहीं है; इसलिए पर को अपना भाव मानता है। है? आहाहा! **यह मेरा है; इस प्रकार अनुभव करता है।**

कोष्टक में **(जैसे स्फटिक पाषाण में अनेक प्रकार के वर्णों की निकटता से अनेक वर्णरूपता दिखायी देती है....)** स्फटिक में ऐसा दिखाई देता है। **(स्फटिक का निज श्वेत निर्मल भाव दिखायी नहीं देता....)** आहाहा! स्फटिक जिस बर्तन में

रखा हो, उसकी झाँईं दिखायी देती है, उसे अज्ञानी स्फटिक मानते हैं। इसी प्रकार **अज्ञानी को कर्म की उपाधि से आत्मा का शुद्ध स्वभाव आच्छादित हो रहा है....** आहा...हा...! ये पुण्य और पाप के विकल्प का राग — चाहे तो दया का राग हो, चाहे तो भक्ति का राग हो... आहाहा! परन्तु उस राग — अस्वभावभाव को अपना मानकर... आहाहा! **शुद्धस्वभाव आच्छादित हो रहा है....** राग को अपना मानने से, राग को जाननेवाला भगवान ज्ञानस्वरूप आच्छादित-ढँक रहा है। आहाहा! राग की प्रीति के प्रेम में ज्ञानस्वरूपी भगवान ढँक गया है। अरे...अरे...! ऐसी बातें हैं। आहा!

जैसे लाल-पीला आदि बर्तन हो, उसमें स्फटिक रखने से उसमें उसकी उपाधि दिखती है तो उसे निर्मल स्वभाव नहीं दिखता; इसी प्रकार अज्ञानी, अपना चैतन्य ज्ञान-स्वभाव प्रभु है, उसे राग की उपाधि से अपना मानकर, उसे स्वच्छता का ज्ञान नहीं होता, आहाहा! **कर्म की उपाधि से....** अर्थात् रागादि। **आत्मा का शुद्ध स्वभाव आच्छादित हो रहा है....** दिखायी नहीं देता। राग को ही देखनेवाले को... आहाहा! राग को ही जाननेवाला वहाँ ढँक गया, उसे राग ही रह गया, आहाहा! मैं तो राग हूँ — ऐसा अज्ञानी को राग की उपाधि से ज्ञानस्वभाव ढँक गया, तिरोभूत हो गया, दृष्टि में नहीं रहा। आहाहा!

(इसलिए पुद्गलद्रव्य को अपना मानता है...) आहाहा! भगवान ज्ञान-चैतन्य चमत्कार, आनन्दकन्द प्रभु, राग के प्रेम में, अस्वभावभाव की एकत्वबुद्धि में स्वभावभाव ढँक गया तो वह स्वभावभाव दिखायी नहीं देता; अकेला राग ही दिखायी देता है। आहाहा! ऐसी बातें अब! यह समयग्दर्शन होने की रीति है। आहाहा! **ऐसे अज्ञानी को अब समझाया जा रहा है कि....** देखो, यह समयसार अज्ञानी को समझाया जा रहा है। अप्रतिबुद्ध को यह समझाया जा रहा है। आहाहा!

रे दुरात्मन्!... आहाहा! सन्तों की करुणा है, करुणा, हों! आहाहा! प्रभु! तू राग और पुण्य का जो परिणाम है, वह पुद्गल है, उसे अपना मानता है, हे दुरात्मन! हे दुष्ट आत्मा! आहाहा! सन्तों की करुणा है, अरे...! तू क्या मानता है? भाई! आहाहा! तेरी चीज इस राग के विकल्प से महाचैतन्य चमत्कार भिन्न पड़ी है न! आहाहा! उसे तो तू मानता

नहीं, जानता नहीं और जो तेरी चीज में नहीं — ऐसे रागादि पुद्गल को अपना मानता है, दुरात्मन्! तेरी दृष्टि मूढ़ है। आहाहा!

राग में सुखबुद्धि होती है तो आनन्दकन्द का नाथ वहाँ ढँक गया। आहाहा! यह राग के विकल्प में ठीक है, सुख है, मजा है, ऐसा माननेवाले ने राग, पुद्गल है उसे अपना माना। राग से (भिन्न) आनन्दस्वरूप भगवान में आनन्द है, आत्मा आनन्दस्वरूप है — ऐसा हे दुरात्मन्! तूने नहीं माना। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें! अभी तो सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन की बात चलती है। मुनिपना, बापू! यह तो कोई अलौकिक वस्तु है। क्या हो? समझ में आया? यहाँ तो भगवान अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की चमत्कारी वस्तु है, उसे राग की उपाधि में राग को ही अपना मानकर चैतन्य-चमत्कार, राग से भिन्न है, उसे छोड़ देता है। जो स्वभावभाव है, उसे नहीं मानता; अस्वभावभाव है, उसे मानता है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो यह राग है वह पुद्गल-अजीव है। अजीवभाव में आत्मा रुककर, त्रिकाली ज्ञान-जीवस्वभाव उसे ढँक गया। आहाहा! ऐसी बातें अब, लो! पहले तो 'दया वह सुख की बेलड़ी, दया वह सुख की खान, अनन्त जीव मुक्ति गये....' पहाड़े बोलता है, किसकी दया? आहाहा! पर की दया का भाव तो राग है और राग को देखनेवाला पुद्गल को देखता है। आहाहा! भगवान की भक्ति भी राग है, शास्त्र की भक्ति भी राग है और तू राग को देखता है तो उस पुद्गल को ही तू देखता है, उस अजीव को तू देखता है और अस्वभावभाव है, वही मेरा है — ऐसा तू मानता है। आहाहा! कठिन बात, आहाहा!

श्रोता : राग में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्ण, गन्ध नहीं परन्तु अचेतन है। चैतन्य-चमत्कार ज्ञानस्वरूप भगवान की किरण राग में नहीं है; इस कारण राग को अचेतन और पुद्गल कहा गया है। आहाहा! चाहे तो पंच महाव्रत का राग-विकल्प हो तो भी वह अचेतन है। चैतन्यप्रकाश की मूर्ति भगवान सूर्य की किरण उसमें नहीं है। वह चैतन्यरूपी सूर्य की किरण राग में नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इस कारण राग को अचेतन कहकर पुद्गल कहा है। आहाहा! यह श्रवण में भी जो राग उत्पन्न होता है, वह राग पुद्गल है। आहाहा! क्योंकि चैतन्यस्वभाव

का उसमें अभाव है, आहाहा! ऐसे पुद्गल को अपना मानकर अज्ञानी अपना स्वरूप, राग है — ऐसा मानता है। हे दुरात्मन! आहाहा! सन्तों की कड़क भाषा नहीं (परन्तु) करुणा है। आहाहा!

अरे भगवान! यह दया, दान, व्रत, भक्ति का राग तो पुद्गल है। अरर! यह बात! पंच महाव्रत का विकल्प, राग है, आहाहा! वह पुद्गल है। हे दुरात्मन्! तू पुद्गल को अपना क्यों मानता है? आहाहा! पैसे-बैसे की बात तो कहाँ रह गयी! वह तो धूल कहाँ (रह गयी)। उसे अपनी माने वह तो महामूढ़ है, महामूढ़! आहाहा! यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव कहते हैं, उसे सन्त, आड़तिया होकर जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! वीतरागी दिगम्बर सन्त हैं, आहाहा! आनन्द और आनन्द की वीतराग दशा में झूलते-झूलते सन्तों को करुणा से विकल्प आया। आहाहा!

ऐसे एक ओर 'भगवान आत्मा' ऐसा कहे और यहाँ 'दुरात्मन्' ऐसा कहा। ७२ गाथा में ऐसा कहा कि यह पुण्य और पापभाव प्रभु! अशुचि है, मैल है, नाक की गन्दगी-मैल है, यह मैल है, अचेतन है, जड़ है। भगवान-ऐसा शब्द लिया है। भगवान! तू तो निर्मल आनन्द ज्ञानस्वरूप है न! प्रभु! आहाहा! समझ में आया? यहाँ राग को पुद्गलरूप से गिनकर (अजीव का कहा) और अज्ञानी अपने आत्मा का है — ऐसा मानता है। गिना किसने? ज्ञानियों ने (पुद्गलरूप से) गिनकर... आहाहा! (अज्ञानी) उस राग को अपना मानता है और वह राग करते-करते कल्याण होगा (ऐसा मानता है)। आहाहा! यह पंच महाव्रत पालते-पालते, व्यवहार रत्नत्रय करते-करते (कल्याण मानता है)। पुद्गल करते-करते पुद्गल से चैतन्य जागृत होगा (— ऐसा मानता है)। आहाहा!

हे दुरात्मन्!... आहाहा! क्योंकि राग को अपना मानता है, यह तेरा आत्मा दुरात्मा है। आहाहा! **आत्मघात करनेवाले!....** आत्मघात करनेवाले, आहाहा! यह राग का कण-विकल्प, वृत्ति उत्पन्न हुई — दया, दान, व्रत, भक्ति के राग की वृत्ति को अपनी मानकर आत्मघाती है। तू आत्मा का घात करनेवाला है, प्रभु! आहाहा! ऐसी तो दिगम्बर सन्त करुणा से बात करते हैं। आहाहा! जंगलवासी सन्त, सिद्ध के साथ बातें करनेवाले (हैं, वे) जगत् के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्यदेव भगवान के पास

गये थे। संवत् ४९, दो हजार वर्ष पहले (गये थे) भगवान तो विराजमान हैं, अभी पाँच सौ धनुष की देह है। आहाहा! वहाँ आठ दिन रहे और वहाँ श्रुतकेवली के पास चर्चा करके कितना ही समाधान हुआ। यहाँ आये और तत्पश्चात् यह शास्त्र बनाये। आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान। सीम-अपनी मर्यादा में-आनन्द में-वीतरागस्वभाव में (रहनेवाले), उन सीमन्धर भगवान की पाँच सौ धनुष की देह है, करोड़ पूर्व की आयु है। श्वेताम्बर में चौरासी लाख पूर्व की आयु कहते हैं — ऐसा नहीं है, करोड़ पूर्व की आयु है। श्वेताम्बर ने सब बातें बहुत कल्पित कर डाली है। क्या कहें? अरेरे!

श्रोता : उन्हें सहारा देनेवाले मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सब अज्ञानी हो तो इकट्ठे मिलते ही है न! आहाहा! करोड़पूर्व की प्रभु की आयु है। समवसरण में विराजमान हैं। आहाहा! वहाँ आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह बनाया, फिर एक हजार वर्ष बाद अमृतचन्द्राचार्यदेव हुए, उनकी यह टीका है। आहाहा!

हे आत्मघाती! आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु है। ऐसे स्वभाववान को नहीं माननेवाला और अस्वभाव राग, पुद्गल है (उसे अपना) माननेवाला आत्मघाती है। तूने आत्मा के शुद्धस्वभाव का अनादर किया है। यह तूने आत्मा का घात किया है। युगलजी! ऐसी बात है। आहाहा! चाहे तो शास्त्र श्रवण का राग हो... आहाहा! शास्त्र कहने का विकल्प हो परन्तु वह राग, पुद्गल है। आहाहा! प्रभु! उसमें चैतन्य के नूर के तेज का प्रवाह नहीं आया। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में शुद्ध चैतन्य का प्रवाह आता है। आहाहा! राग और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि भाव या हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना के भाव में भगवान चैतन्य का रस अंश भी नहीं आया। आहाहा! जिसमें अचेतनपना, पुद्गलपना है, उसे प्रभु! तूने अपना माना है तो तू आत्मघाती है, प्रभु! आहाहा!

श्रोता : स्वभाव और अस्वभाव की स्पष्टता अभी होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य। ऐसी (बात है) बापू! भाई, क्या हो? आहाहा!

निर्मलानन्द चैतन्यस्वरूप स्व-पर प्रकाशक स्वभाव का सागर प्रभु है — ऐसे

अपने स्वरूप को नहीं मानकर, उससे विपरीत रागादि जो पुद्गल-अचेतन-जड़ है, उन्हें अपना मानकर वहाँ रुक गया (तो तू) आत्मघाती हुआ। आहाहा! भगवान चैतन्यमूर्ति निर्मलानन्द प्रभु श्रद्धा में आना रह गया। रागादि मैं हूँ यह (श्रद्धा) तूने की। क्रियाकाण्ड में सामायिक और प्रौषध और प्रतिक्रमण करता है, वह राग है, राग है। सामायिक (कैसी) ? समकित दृष्टि बिना सामायिक कैसी ? आहाहा! बहुत कठिन काम, सामायिक करूँ और प्रौषध करूँ और प्रतिक्रमण करूँ, यह सब तो विकल्प-राग है, वह पुद्गल है। उस पुद्गल को अपना माननेवाला चैतन्य आनन्द के नाथ का घात कर डालता है। वह नहीं, मैं यह हूँ। आहाहा! ऐसी बात है।

आहाहा! सन्तों की करुणा तो देखो! हे दुरात्मन्! राग की वृत्ति उत्पन्न हुई, ज्ञानानन्दस्वभाव में राग नहीं है, वह राग आया कि दया पालूँ और यह करूँ और वह करूँ, वह वृत्ति उपाधि है। आहाहा! वह पुद्गल है, अचेतन है, अजीव है, जड़ है, मैल है, दुःख है। आहाहा! उसे तू अपना मानता है और भगवान चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु का अनादर करता है तो विद्यमान चीज को तूने अविद्यमान कर डाली और अविद्यमान चीज को तूने विद्यमान कर डाली। रागादि अविद्यमान चीज है, वास्तव में अन्दर नहीं है। समझ में आया ? उनका सत्पना तूने स्वीकार किया तो भगवान सत्स्वरूप त्रिकाल का तूने अनादर कर डाला। आहाहा! बहुत कठिन काम! दुनिया को अभी यह मिलना बहुत कठिन! बस! आठ दिन, दस दिन हो आठ अपवास करे, उसमें रात्रिभोजन त्याग करे (तो) ओहोहो! गजब किया! महीने के अपवास (करे) महीने-महीने के अपवास! थे कब उपवास ? तेरा लंघन है। वह तो क्रियाकाण्ड का राग मन्द किया हो तो पुण्य है। मान के लिए करे और यह अपवास करेंगे तो.... क्या कहलाता है वह ? उच्छामणी करे, आहाहा! फिर पाँच-पच्चीस हजार खर्च करे तो अपना मान रहे.... बहू ने बहुत अच्छी तपस्या की थी (यह भाव) तो पाप है। कदाचित् राग मन्द किया हो तो वह पुण्य है, पुद्गल है, राग है; वह धर्म नहीं। आहाहा!

रे दुरात्मन्! आत्मघात करनेवाले!.... आहाहा! महाप्रभु चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा चैतन्य चमत्कार के अस्तित्व का तो तूने घात कर दिया, प्रभु! आहाहा! और राग को तूने जीवित

रखा, वह तेरा जीवन हो गया; पुद्गल में तेरा जीवन हो गया। **जैसे परम अविवेकपूर्वक....** भाषा देखो! **जैसे परम अविवेकपूर्वक खानेवाले हाथी....** हाथी आदि पशु। हाथी को चूरमा देते हैं न? साथ में घास हो, घास; चूरमा के साथ घास हो, वह **हाथी आदि पशु सुन्दर आहार को तृणसहित खा जाते हैं....** आहाहा! वह सुन्दर आहार चूरमा हो, उसे घास के साथ खा जाते हैं परन्तु घास और चूरमा भिन्न है, इसका पता नहीं है। आहाहा! पडसा होता है न? हमारी काठियावाड़ी भाषा है। पडसा समझे? काशीफल, पडसा होता है। इतना-इतना चौड़ा होता है, उसमें चूरमा या रोटी या लड्डू डालकर (दें फिर) खाता है। आहाहा!

परम अविवेकपूर्वक खानेवाले हाथी आदि पशु सुन्दर आहार को तृणसहित खा जाते हैं.... आहाहा! उस तृणसहित चूरमा को खा जाते हैं। **उसी प्रकार खाने के स्वभाव को तू छोड़,....** आहाहा! राग मेरा है — ऐसा अनुभव छोड़। आहाहा! जीव अधिकार है न? इस राग को अजीव में — पुद्गल में डाल दिया है। आहाहा! यहाँ तो अभी व्यवहाररत्नत्रय अच्छा करे तो निश्चय पाये, पहुँच सके (ऐसा मानते हैं)। अरे...! प्रभु! यह तू क्या करता है? भगवान के विरह में तूने क्या किया? प्रभु! लोक को प्रसन्न रखकर यह तूने क्या किया? लोग प्रसन्न हों कि आहाहा! देखा? व्यवहार से भी निश्चय प्राप्त होता है, एकान्त निश्चय से ही निश्चय प्राप्त होता है — ऐसा नहीं। वे सुननेवाले, आहाहा! सुननेवाले को और कहनेवाले को कुछ पता नहीं होता। आहाहा!

श्रोता : दृष्टान्त दीजिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त कहा न यह! दूसरे को ऐसा कहते हैं — तू यह दया, दान, व्रत के परिणाम करता है तो तेरा कल्याण होगा, इससे तुझे सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! पुद्गल खाते-खाते तुझे आत्मा का आनन्द होगा... जहर खाते-खाते तुझे अमृत की डकार आयेगी! आहाहा! भाई! मार्ग बहुत अलौकिक है! सच्चिदानन्द प्रभु, जिसमें प्रभु में-आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द ठसाठस भरा है, भाई! तुझे पता नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर सागर प्रभु पूरा है, उसे तू नहीं मानकर, राग के स्वाद में तेरी मिठास आ गयी। आहाहा! वह हाथी आदि अविवेकी (प्राणी) घास के साथ चूरमा खाता है, वैसे तू

राग के साथ आत्मा का अनुभव करता है परन्तु आत्मा वैसा है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। फिर लोग 'सोनगढ़' का कहते हैं न? कहो प्रभु! शास्त्र है तो भगवान का; यह कहीं (यहाँ का नहीं है) सोनगढ़ का एकान्त है, निश्चयाभास है... कहो प्रभु! आहाहा! बापू! तेरा पन्थ कोई अलग प्रकार का है नाथ!

यहाँ आचार्य कहते हैं **उसी प्रकार खाने के स्वभाव को तू छोड़, छोड़।...** आहाहा! यह राग मेरा है ऐसा अनुभव छोड़। आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का शास्त्र का (राग) आया हो, शास्त्र को वन्दन करने का भाव राग है और राग का अनुभव है, वह पुद्गल का अनुभव है। आहाहा! हे आत्मा! वह तू छोड़। आहाहा! दो बार कहा — **छोड़, छोड़।...** यह राग का अनुभव, हाथी जैसे चूरमा के साथ घास खाता है, वह तू छोड़! वैसे भगवान का राग के साथ अनुभव करता है, उस राग को छोड़, वह राग तेरी चीज नहीं है। आहाहा! राग किसे कहना यह अभी पता नहीं होता। स्त्री, पुत्र के प्रति राग करो, अमुक करो, यह राग... परन्तु दया पालना और पंच महाव्रत का भाव, वह भी राग है। आहाहा!

श्रोता : भगवान के दर्शन करने का भाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान के दर्शन करना, वह राग है।

श्रोता : आपका व्याख्यान सुनना वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग है श्रवण का — कहा न? इस पुस्तक का वाँचन करना, वह विकल्प राग है। आहाहा! भाई! वह हो, परन्तु वह तू नहीं है; वह तेरी चीज नहीं है प्रभु! आहाहा! अरे! अनन्त काल से भटक रहा, बिना भान भगवान; सेव्या नहीं गुरु सन्त को, छोड़ा नहीं अभिमान। सन्त किसे कहना? और किसे कहना ज्ञानी? बापू! अरेरे! वन-जंगल में रण में अकेला हो वैसे अभी अकेले हो गये हैं। आहाहा!

भगवान परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, प्रभु! तू एक बार मेरी बात सुन! आहाहा! जिसे तू धर्म मानता है — दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, वह राग है, पुद्गल है, अचेतन है, जड़ है, अजीव है। उसका अनुभव है, वह आत्मा का अनुभव है — ऐसी दृष्टि छोड़ दे। आहाहा! कठिन काम इसमें, भाई!

जिसने समस्त सन्देह,.... अब क्या कहते हैं ? भाई ! प्रभु ! भगवान आत्मा तो सर्वज्ञदेव ने उसे कहा है। यह राग कहीं आत्मा नहीं है। आहाहा ! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधता है, वह भाव, राग है; वह आत्मा नहीं। आहाहा ! लो, 'षोढस कारण भावना भाय, तीर्थंकर पद पाये', नहीं आता ? प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। वह होता है समकिती को, परन्तु वह राग, पुद्गल-जड़ है। आहाहा ! उससे तीर्थंकर प्रकृति का — जड़ परमाणु का बन्ध होता है। आहाहा ! वह अबन्धभाव नहीं है। आहाहा !

तू भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब चन्द्र शीतलस्वरूप वीतरागमूर्ति शीतल शान्तस्वरूप है, उसमें अशान्त ऐसे विकल्प और राग को तू अपने अनुभव करता है, वह छोड़ दे, प्रभु ! सुखी होना हो और धर्म पन्थ में जाना हो तो छोड़ दे ! आहाहा ! क्यों छोड़ दे ? **जिसने समस्त सन्देह, विपर्यय, अनध्यवसाय दूर कर दिये हैं....** भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने समस्त सन्देह, विपरीत और अनध्यवसायभाव दूर कर दिये हैं। **और जो विश्व को (समस्त वस्तुओं को) प्रकाशित करने के लिए....** आहाहा ! विश्व अर्थात् समस्त वस्तु-लोक-अलोक। **प्रकाशित करने के लिए एक अद्वितीय ज्योति है,....** अजोड़ ज्योति चैतन्यभगवान सर्वज्ञ हैं। आहाहा ! सर्वज्ञ अरिहन्त परमेश्वर अद्वैत ज्योति, अजोड़ ज्योति हैं। उनके जैसी दूसरी कोई ज्योति जगत में है नहीं।

ऐसे सर्वज्ञ ज्ञान से स्फुट (प्रगट) किया गया.... त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर... आहाहा ! सम्पूर्ण लोक और अलोक को प्रकाशित करनेवाले ऐसे सर्वज्ञ भगवान द्वारा (प्रगट) किया गया **जो नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य....** प्रभु ने तो आत्मा को उपयोगस्वरूप कहा है। जानना-देखना उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा है। वह रागरूप किस प्रकार हो गया ? आहाहा ! सर्वज्ञ **सव्वण्हुणाणदिट्ठो** सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर अरिहन्तदेव ने सर्वज्ञस्वभाव में जीव को उपयोगस्वरूप देखा है। जानन-देखन उपयोगी आत्मा। इस राग को भगवान ने आत्मा नहीं कहा है। आहाहा ! यह तो बात-बात में अन्तर लगता है। क्या हो भाई ! आहाहा !

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं, वह यह मुनि कहते हैं। भाई ! सर्वज्ञ परमेश्वर लोकालोक के प्रकाशक हैं, उन्होंने तो... आहाहा ! उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य कहा है। जीवद्रव्य अर्थात् भगवान आत्मा को अनन्त गुणवाला नहीं कहा परन्तु

उपयोगस्वरूप आत्मा कहा है। क्योंकि अनन्त-अनन्त गुण हैं तो अनन्त-अनन्त गुण के कितने भेद इसे बतलाना? यह एक चीज महाप्रभु उपयोग जिसका लक्षण है, आहाहा! उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा, वह जीवद्रव्य है, **उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य**.... आहाहा! अनन्त गुणस्वरूप जीवद्रव्य नहीं लिया। मुख्य लक्षण बताने के लिए ऐसा कहा कि जीव भगवान तो उपयोगस्वरूप उसका स्वभाव है न! आहाहा! जानना-देखना ऐसे उपयोगस्वरूप भगवान है न! आहाहा! जीवद्रव्य को ऐसा कहा।

सव्वण्हुणाणदिट्ठो पाठ है न? यह तो पाठ है, गाथा है, देखो न **सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।** आहाहा! उसे अनन्त गुणवाला है — ऐसा नहीं कहा। आहाहा! परन्तु जानना-देखना उपयोग जो मुख्य चीज है, जो विशिष्ट लक्षण है (वैसे स्वरूप कहा); इसलिए कहा न? **उवओगलक्खणो णिच्चं** — ऐसा कहा है। यह भगवान तो जानन-देखन उपयोग लक्षणस्वरूप है। वह तेरे राग में कैसे आ गया? आहाहा! समझ में आया?

चैतन्य के अनन्त गुणस्वरूप आत्मा — ऐसा नहीं लेकर, महाप्रभु उपयोग लक्षण निश्चय-ऐसा सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा को कहा है न! आहाहा! और **लक्खणो** लिया है। **उवओगलक्खणो णिच्चं सव्वण्हुणाणदिट्ठा** आहाहा! भगवान आत्मा को भगवान आत्मा ने उपयोग लक्षण देखा है, उसमें राग लक्षण और रागभाव आया कहाँ से? ऐसा कहते हैं। जानन-देखन उपयोग है न? आहाहा! दूसरे अनन्त गुण में ऐसा जानन-देखन (स्वरूप) नहीं है। आहाहा! ज्ञानप्रकाश, दर्शनप्रकाश, ऐसा जो उपयोग, उस उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा है। भगवान ने तो ऐसा कहा है और हे दुरात्मन! तू दया, दान के राग को अपना मानता है और पुद्गल से लाभ मानता है, यह कहाँ से लाया? ऐसी बातें हैं।

जिसके प्रकाश के तेज में स्व-पर ज्ञात हो — ऐसा उपयोगस्वरूप भगवान तो है, वह परस्वरूप नहीं। आहाहा! राग तो अनुपयोग है। राग — दया, दान, व्रतादि का विकल्प है, वह तेरा है — ऐसा मानता है (परन्तु) वह तो अनुपयोग है। आहाहा! भगवान तो जानन-देखन उपयोगस्वरूप है — ऐसा भगवान ने देखा है। भगवान ने तो ऐसा कहा है। जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान विश्व प्रकाशक है। विश्व अर्थात् समस्त का प्रकाशक। तीन काल-तीन लोक को एक समय में जाने — ऐसा प्रकाश (प्रगट है)।

आहाहा! ऐसी चैतन्यज्योति भगवान ने तो ऐसा कहा है कि जीव तो निश्चय से उपयोग लक्षण है। उसमें तेरा राग कहाँ से आया? आहाहा! वहाँ बैंगलोर में कुछ मिले — ऐसा नहीं। धूल आवे वह धूल — पैसा। आहाहा!

नित्य उपयोगस्वभावरूप.... यह एक शब्द पड़ा है। त्रिकाल ज्ञान उपयोग, दर्शन उपयोगस्वरूप वह है। आहाहा! वह रागरूप कभी नहीं हुआ, रागरूप होता नहीं। आहाहा! उपयोगस्वरूप जीव चैतन्य, वह अजीव — रागरूप कैसे हो? जो अनुपयोग है, उपयोग नहीं। आहाहा! समझ में आया? बात कहना सूक्ष्म और कहना कि समझ में आया? समझ में आता है? बापू! यह (बात) है, भाई! आहाहा!

एक विश्व को-सर्व को प्रकाशित करनेवाले भगवान सर्वज्ञदेव **सर्वज्ञ ज्ञान से स्फुट (प्रगट) किया गया....** सर्वज्ञ ज्ञान से प्रगट किया गया। **नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य....** देखो! नित्य उपयोगस्वरूप जीवद्रव्य — ऐसा भी नहीं कहा। नित्यस्वभाव — ऐसा नहीं कहा, नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य (कहा है)। आहाहा! जानन-देखन उपयोगस्वभावरूप.... आहाहा! जीवद्रव्य **वह पुद्गलद्रव्य कैसे हो गया....** वह रागरूप कैसे हो गया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। युगलजी! भगवान का यह मार्ग है, भाई! आहाहा! दुनिया फिर चाहे जो कहो — एकान्त है, निश्चयाभास है — ऐसा कहे, प्रभु! भाई! तुझे राग के प्रेम में वस्तु भिन्न है, उसका भान नहीं है। आहाहा! उसे ऐसा कि ऐसी क्रिया करते हैं, महाव्रत पालते हैं, इन्द्रिय दमन करते हैं, आजीवन ब्रह्मचर्य पालते हैं तो भी कल्याण नहीं होगा? यह सब क्रिया राग की है, सुन तो सही! यह तो राग की वृत्ति का उत्थान है। भगवान आनन्दकन्द में वह उत्थान है ही नहीं। आहाहा!

कैसी गाथा है, देखो न! आहाहा! यह पुद्गलद्रव्य कैसे होगा? जिससे तू यह अनुभव करता है कि **'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है'....** राग मेरा है। क्या हो गया तुझे? आहाहा! घास निकाल देने की चीज है, उसे चूरमा के साथ खाता है? राग पुद्गल है, उसके साथ आत्मा मेरा है — ऐसा अनुभव करता है? आहाहा! गजब है न? वास्तव में तो यह जीव-अजीव अधिकार है, इसलिए जो राग है — चाहे तो दया का, व्रत का, भक्ति-पूजा का, वह सब अजीव है, वह पुद्गल है, वह जड़ है, अचेतन है। अरर! ऐसा

सुनना (कठिन पड़ता है।) आहाहा! सर्वज्ञ भगवान ने तो ऐसा कहा है। आहाहा! तू ऐसा नया कहाँ से निकला कि यह राग की क्रिया करते-करते, अनुपयोग करते-करते उपयोग हो जायेगा! आहाहा!

आहाहा! **क्योंकि यदि किसी भी प्रकार से जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप हो....** किसी भी प्रकार से भगवान आनन्द और ज्ञान उपयोग, वह रागरूप हो... है? **और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यरूप हो....** और राग-पुद्गलद्रव्य है, वह जीवद्रव्यरूप हो... दृष्टान्त देंगे। **तभी 'नमक का पानी'....** आहाहा! नमक का पानी। नमक होता है न? गर्मी में पानी हो जाता है न? गर्मी के कारण (पानी हो जाता है)। नमक का पानी पहले लेना है। पानी का नमक बाद में लेंगे। पानी का नमक होता है, यह बाद में... यहाँ तो पहले नमक का पानी (लेते हैं)। **इस प्रकार के अनुभव की भाँति....** आहाहा! समझ में आया? दृष्टान्त बाद में विशेष आयेगा... अभी इतना बाकी है।

पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यरूप हो तभी 'नमक का पानी' इस प्रकार के अनुभव की भाँति ऐसी अनुभूति वास्तव में ठीक हो सकती है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है', किन्तु ऐसा तो किसी भी प्रकार से नहीं बनता। आहाहा! जैसे नमक है, वह पानी हो जाता है; वैसे भगवान चैतन्य है, वह राग हो जाता है — ऐसा कभी नहीं बनता।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)